

ननिहाल: जीवन की पाठशाला

लेखक: भगीरथ ब्रह्मभट्ट

अनुवादक: रजनीकान्त एस.शाह

आजकल मामा की ममता और भानजों के भाव काम होते जा रहे हैं।

जिस शब्द में मा दो बार आए वह मामा। सगे मामा के खेत में आंब की केरी खट्टी हो तो गाँव के किसी और मामा के आंब से केरी तोड़ी जा सकती है।

विवाहिता को माइके का और हर बच्चे का ननिहाल से जो नाता था, उन दिनों की भावना की महिमा गायन करने जैसा है। विवाहित बेटी को माइके के प्रति पक्षपात.... और बच्चे के लिए सबसे प्यारे हैं मामा और ननिहाल। हर बच्चे के लिए शैशवकाल की समृद्धि ही ननिहाल थी। ननिहाल में नाना-नानी, मामा-मामी के स्नेह की अपार वृष्टि होती रहती है। गाँव में तो ब्राह्मण से भी भानजे का सम्मान ज्यादा, इसीलिए तो भानजे अत्यानंदित रहते हैं और लाड-प्यार पाते हैं। घर आए हुए मेहमान से भी भानजों का दरज्जा विशेष। अपने बेटे को उंगली पकड़वाकर चलाये और भानजों को गोद में उठाए वह और कोई नहीं पर मामा! भानजों को कभी नाराज नहीं करना है। गाँव समस्त में भानजों का बड़ा रौब। 'भानजा' कहने के बाद परवाना मिल जाता...कभी कोई गुनाह हो -किसी का आंब झटक जाए या किसी के खेत में जाकर अमरूद चुराया जाए, भानजे का सब कुछ माफ.....गाँव में मरजी पड़े उस घर में खाने के लिए बैठा जा सकता है और जहाँ जो मरजी किया जा सकता है.....भानजे को खुली छुट....'ननिहाल में रहना और परोसे माँ फिर तो कहना ही क्या? भानजी हो या भानजा मामा-मामी के प्रेम में ऐसे तराबोर जैसे उनकी ही सन्तानें!

जिस शब्द में 'मा' दो बार आए वह मामा। सगे मामा के खेत में आंब की केरी खट्टी हो तो गाँव के किसी और मामा के आंब से केरी तोड़ी जा सकती है। कोई रोकता ही नहीं। ननिहाल तो ददिहाल से भी प्यारा। ननिहाल के कपड़े, बस्ता,पेंसिल। सबकुछ आत्मीय लगे। 'मामा ने दिया है', 'मामा को कह दूंगा' जैसे वाक्य ही मामा के प्रति प्रेम का प्रमाण थे। वेकेशन होने से पूर्व ही सारी तैयारियाँ हो जाती थी, गुड जैसे मीठे मामा की सवारी आ जाती थी.....आजकल तो काका-मामा-मौसा-फूफा के संबंध मात्र औपचारिक ही रह गए हैं। कई बच्चे तो पहचान भी नहीं पाते हैं। तब 'मामा'-'भानजे' के सम्बन्धों की एक अलग ही ऊंचाई थी। भानजे के कसूर की माफी मामा मांगते थे। 'मामा का घर कितनी दूर? दीया जले उतनी दूर...' ऐसी लोकोक्ति कंठस्थ थी, तब तो वेकेशन होते ही पैर थिरकने लगते थे और मन ननिहाल पहुँच जाता था और उसके बाद शरीर।....दो महीने पहले से ही इंतजार रहता था कि कब छुट्टियाँ हो? गाँव के बच्चे शहर में और शहर के बच्चे गाँव में या इस प्रकार एक गाँव के बच्चों को अन्य गाँव का अनुभव करवाया जाता था। भानजों का इंतजार ननिहाल में किया जाता था.....आज तो कोई मामा प्रतीक्षा करते नहीं हैं और किसी भी भानजे को फुरसत नहीं है। पहले तो भानजों को अपने घर से ज्यादा ननिहाल ही प्रिय लगता था....मामा के घर में घुलमिल जाते थे। खेती के काम में जुड़ जाते थे...मामा का बोझ भी उठा लेते थे भानजे...खेती के काम में सहायक होते थे-चाय लाने,बैलों को पानी दिखाने,भैंसों चराने,कुछ लाने-ले जाने के काम में भानजे हमेशा तैयार रहते थे। ... आज तो वे दिन मात्र स्मृतिशेष बनकर रह गए हैं।

तब कंप्यूटर के,संगीत के,स्पोकन इंग्लिश के,कराटे के क्लासिस भी कहाँ थे? मास्टर साहब के स्कूल बंद हों तब मामा के घर जीवन की पाठशालाएँ खुलती थीं....मामा के घर सबके साथ घुलमिल जाना....जो मिल जाए सो खा लेना,छोटे-मोटे काम करना,विविध अनुभव हासिल करना आदि की शिक्षा थी- जीवन की। स्वजनों को,सगे संबंधियों को पहचानना,उनका स्नेह प्राप्त करना-उनके दिल में जगह पाना। कई भानजों की शादी मामा की प्रतिष्ठा के आधार पर होती थी। आजकल तो जीवनशिक्षण जैसा कुछ रहा ही नहीं है। कोई किसीका नहीं, इस बात का अहसास बालक बचपन से ही करने लगता है। सगे-संबंधी और संयुक्त परिवार की भावना जैसा अब कुछ रहा ही नहीं है। सगपन भी अब नाममात्र की रह गये हैं, काम के नहीं। वास्तविक, कुदरती,साहजिक आनंद अब रहा ही नहीं है। अब तो सगपन में भी दंभ पलने लगा है। निरी कृत्रिमता ही कृत्रिमता! मामा को भी प्रतिष्ठा की छूत लगी हुई है तो भानजे को भी अपने भविष्य को लेकर चिंता है- दोनों ही गलत दिशाओं में हैं,इन्हें यह समझ कहाँ है? पहले तो ऐसी रूढ़ि व्यवहार में रूढ़ हो गई थी-'मामा का घर कितनी दूर?' उसका उत्तर था-'दीया जले,उतनी

दूर' कहा जाता था... हर भानजे के लिए मामा के घर तो उजाला ही उजाला होता है।-आज तो पूछना पड़ता है-मामा का घर कितनी दूर?'

आजकल तो छुट्टियों में भी कोई खेत पुकार नहीं रहा। आवाज तो दे रहा है,पर कोई सुनता नहीं है। किसी भी बच्चे-भानजों को 'घर-घर' खेलना आता नहीं है। गीली मिट्टी में पैर डुबो कर मिट्टी की जुराबें पहनने का मजा अब कौन लेना चाहता है? खेत की रक्षा के लिए कंटीली बाड़ें कहाँ बनानी हैं? मामा के घर यह सब करने का मौका मिलता था और जब खाने के लिए बैठायें तब प्यार से खिलाते थे।-आत्मीयता को छूत लग गई है। कहीं कोई भाव अखंड नहीं रहा है। हमारे सम्बन्धों की दशा बकैना भैंस सी हो गई है। टूट जाने के कगार पर खड़े कुछ संबंध मात्र मुँहबोले ही बचे रह गए हैं। गर्मियों के सूखे दिनों में भानजे उन रिश्तों का हराभरा ताजगीपूर्ण अनुभव करते थे। -और फिर ये कैसे अनुभव? मामा के घर गाँव में घरों के नलिए सही किये जा रहे हों,उसे देखना,टूटे हुए नलिये की गाड़ी बनाकर खेलना,.....नलिए सही करनेवाले को चाय-पानी देना.....चारपाई जब पट्टियों से भरी जा रही हो तब उसके पायों के नीचे से डोरी देनामेहमान के आने पर पानी देना,शादी हो और सेवई बन रही हो तब उसे पकड़ना,...ढोर-डंगर को चारा देना....ठंडे पानी कि गगरी जब खाली हो जाए तब उसे भर देना तो....आम तोड़ना और खाना। मित्रों के साथ धमाल-मस्ती करना...अचार बनाने में....., आज अब तो शहर में कितना ही महंगा केसर आम खाओ लेकिन आपको उतना मजा नहीं आयेगा! तब तो खट्टा आम भी कितना मीठा लगता था!! आज के मिष्टान्न मामी द्वारा थाली में रखे गए गुड-घी की तुलना में फीके लगते हैं। मामा-मामी,नाना-नानी की प्यार भरी चूमियां तो जीवन का सद्भाग्य थीं,यह बात किसे कहेंगे? ननिहाल जीवन की पाठशाला थी। कौन सुनेगा? और कौन मानेगा?

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें

